अगर ये बांध बन गया तो जोशीमठ को निगल जाएगा

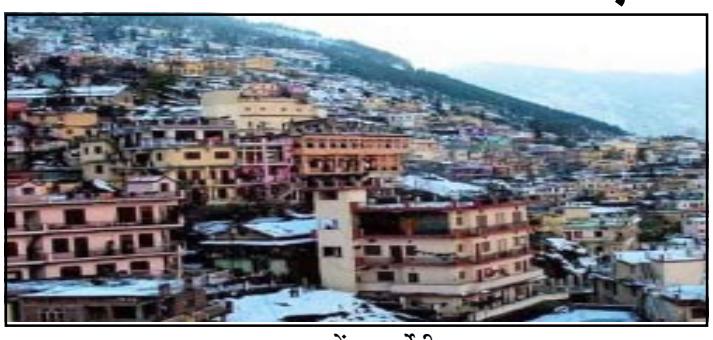

राजेंद्र चतुर्वेदी

जब 1999 में विष्णु प्रयाग में अलकनंदा नदी पर बांध बनने का काम शुरू हुआ था, तब ज्योतिर्मठ और द्वारका शारदा पीठ के शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती जी ने जनता से अनुरोध किया था कि इस बांध के खिलाफ प्रबल आंदोलन छेड़ा जाए।

तब शंकराचार्य के अनुयायियों ने एक आंदोलन की शुरुआत की भी थी, उस आंदोलन को कमजोर करने के लिए एक सांस्कृतिक संगठन आगे आया, उसके स्वयंसेवक घर घर गए। जनता को समझाया कि विकास के लिए बांध जरूरी है।

जनता को यह भी समझाया गया कि शंकराचार्य इसलिए विरोध कर रहे हैं, क्योंकि वे वामपंथी शंकराचार्य हैं, कांग्रेसी शंकराचार्य हैं, इसलिए नहीं चाहते कि एक राष्ट्रवादी सरकार विकास का कोई काम करे। और जनता की समझ में बात आ गई। आंदोलन खत्म हो गया। विकास इतनी तेजी से शुरू हुआ कि नदियों की धाराओं को मोड़ने के लिए सुरंगें तक बना दी गईं। जिस सुरंग ने काम नहीं किया, उसे वैसा का वैसा छोड़ दिया गया, अधबना। अब विकास के इस दौर में मीडिया का यह कर्तव्य है कि वह देश को इस बात की भनक तक न लगने दे कि जोशीमठ कस्बे के ठीक नीचे से एक सुरंग निकाली गई है और जब अलकनंदा का पानी उससे नहीं निकाला जा सका, तो उस सुरंग को वैसा ही छोड़ दिया गया, जो भू-धसान का एक बड़ा कारण बन गई है।

चेतन भगत जैसे विद्वान लेखकों, विचारकों, कॉलमिस्ट का फर्ज है कि वे विष्णु प्रयाग में बंधे विनाशकारी बांध की तरफ देश का ध्यान न जाने दें और जोशीमठ के विनाश का ठीकरा केवल और केवल पर्यटन पर फोड़ दें। इससे आम के आम और गुठलियों के दाम।

एक तरफ तो जनता का ध्यान बांध की तरफ नहीं जाएगा, और वह बांध को हटाने की मांग नहीं करेगी, दूसरी तरफ यह लिखकर सरकार की चापलूसी भी की जा सकेगी कि देश में प्रतिव्यक्ति आय बढ़ गई है, जिससे पहाड़ों पर ज्यादा पर्यटक पहुंचने लगे हैं।

लेखक को और क्या चाहिए। ऊपर से कृपा आती रहे और जीवन धन्य।

दो खुल्ले रुपैया वाले आईटीसैलियों और फोकट में भड़ैती करने वाले फ्रिंज एलिमेंट्स का फर्ज यह है कि जोशीमठ के संकट के लिए जहां भी कोई व्यक्ति अटल श्रद्धेय की भूमिका पर सवाल उठाए, वे फौरन वहां कूद पड़ें और पूछें कि 10 साल तक मनमोहन सिंह क्या करते रहे। जरूरत पड़े तो श्रद्धेय पर सवाल उठाने वालों को 10-20 गालियां तो छूटते ही दे मारें। और जोशीमठ की जनता की नियति है कि वह अपनी जड़ों से कटे, विस्थापित हो। आंदोलन करने से अब कुछ नहीं होगा। आंदोलन तो उस दिन करना चाहिए था, जिस दिन शंकराचार्य (अब ब्रह्मलीन) स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती जी ने आवाज दी थी।

अब कुछ नहीं हो सकता। जब जागो, तभी सबेरा वाला मामला नहीं है यह। देर से जागे, इसलिए चीजें हाथ से निकल गई हैं।

अब सरकार विष्णु प्रयाग का बांध हटाने और पहाड़ों की छाती में किए गए छेद मूँदने के लिए भी अगर तैयार हो जाए तो भी जोशीमठ को सामान्य होने में 20 साल से ज्यादा का समय लगेगा।

काश! सरकारें जोशीमठ की बाबत आईआईटी पंजाब की शोध रिपोर्ट पर ध्यान देतीं!

अमरीक

उत्तराखंड के जोशीमठ में लगातार हो रहे भू-धंसाव की बाबत पंजाब के आईआईटी (भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान) रोपड़ ने भी ठीक एक साल पहले चेतावनी दी थी लेकिन उसे किसी ने अतिरिक्त गंभीरता से नहीं लिया। अगर आईआईटी रोपड़ की भविष्यवाणी पर रत्ती भर भी गौर किया होता तो हालात इतने संगीन नहीं होने थे जितने आज दरपेश हैं।

आईआईटी रोपड़ (पंजाब) का दावा है कि उसके सिविल इंजीनियरिंग विभाग में सहायक प्रोफेसर डॉक्टर रीत कमल तिवारी की अगुवाई में शोधकर्ताओं की एक विशेष टीम ने मार्च, 2021 की शुरुआत में जोशीमठ बाढ़ परिदृश्य के लिए ग्लेशियल विस्थापन का मानचित्रण किया था। इसी के आधार पर भविष्यवाणी और चेतावनी दी गई थी कि निकट भविष्य में जोशीमठ ऐसी किसी आपदा का शिकार हो सकता है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान रोपड़ की ओर से जारी आधिकारिक बयान के मुताबिक प्रोफेसर डॉक्टर रीत कमल तिवारी और आईआईटी पटना में सिविल और पर्यावरण इंजीनियरिंग विभाग में सहायक प्रोफेसर व उनके तत्कालीन पीएचडी छात्र डॉक्टर अक्षर त्रिपाठी ने गहन शोध के बाद पाया था कि जोशीमठ मौत के मुहाने पर खड़ा है।

संस्थान के आधिकारिक बयान के अनुसार शोधार्थियों ने अध्ययन के लिए सेंटिनल-1 उपग्रह जाटा का इस्तेमाल करते हुए परसिस्टेंट सेक्टर एसएआर इंटरफेयरोमेट्री (पीएसआईएनएसएआर) तकनीक का इस्तेमाल किया था। उसी के आधार पर निकले शोध नतीजों से जाहिर हुआ कि जोशीमठ शहर में इमारतों के लिए 7.5 से 10 सेमी विस्थापन के बीच की भविष्यवाणी की गई थी।

शोधार्थियों ने अपने जर्नल में तथ्यों सहित साफ लिखा था कि आने वाले समय में जोशीमठ और आस पास की कई इमारतों में बड़े पैमाने पर दरारें पैदा हो सकती हैं। संस्थान के मुताबिक पिछले दिनों से कुछ ऐसी ही तस्वीर जोशीमठ में सामने आ रही हैं। पूरे अध्ययन की रिपोर्ट 16 अप्रैल, 2021 को लखनऊ में आयोजित एक सम्मेलन में प्रस्तुत भी की गई थी और उत्तराखंड तथा केंद्र सरकार को भी आगाह किया गया था।

डॉक्टर रीत कमल तिवारी का कहना है कि केंद्र सरकार को फौरी कदम इस बाबत यह भी उठाना चाहिए कि हिमालयी आपदाओं पर एक अंतर-आईआईटी उत्कृष्टता संस्थान स्थापित करना चाहिए। यह हिमालयी आपदाओं पर अपनी तरह का पहला सफल अंतर-संस्थागत अध्ययन साबित होगा। इसी मानिंद डॉक्टर अक्षर त्रिपाठी ने भी इंटर-डिसीप्लिनरी और इंटर-आईआईटी स्थापित करने की जरूरत पर जोर दिया है।

क्या किसी को अपनी जाति की वजह से नाम बदलना पड़ा होगा ?

रमेश भंगी

70 के दशक की बात है, मैं रोज सुबह उठकर सुअर चराने जाता था। मां मैला ढ़ोने और साफ-सफाई का काम करती थी। पापा 9वीं पास थे, इसलिए वो चाहते थे कि हमलोग ये काम न करें। इसी वजह से पापा ईंट भट्टे में काम करते थे। मैं भी स्कूल से लौटते वक्त ईंट बनाने के लिए जाता था।

पहले मेरी जाति की वजह से स्कूल में एडमिशन नहीं हो रहा था और जब हुआ तो एक टीचर ने अपने घर पर बुलाकर मुझसे पूरे घर की साफ-सफाई करवाई। बाथरूम, टॉयलेट... सब कुछ साफ करवाया। आज भी लोग मुझसे नफरत करते हैं, मेरे हाथ से पानी भी नहीं पीते। हमें कुएं के किनारे से नीचे हाथ करके पानी पीना पड़ता था, ताकि पानी का छींटा कुएं पर न पड़ जाए। कुएं पर भी जाने की मनाही थी।

मैं रमेश भंगी, मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर्स (गृह मंत्रालय) से बतौर सीनियर ट्रांसलेटर ऑफिसर के पद से 2018 में रिटायर हुआ हूं। उत्तर प्रदेश के बागपत जिले के बलखपुर गांव में वाल्मीकि समुदाय में पैदा हुआ।

बचपन से लेकर अब तक मैंने भेदभाव के अनगिनत दंश झेले हैं। एक-एक कर अपनी पीड़ा बयां करने पर मेरे आंसू में ये शब्द मिल जाते हैं।

क्या किसी को अपनी जाति की वजह से नाम बदलना पड़ा होगा? क्या सरनेम की वजह से शर्मिंदगी महसूस करनी पड़ी होगी?

अगर आप ये सवाल मुझसे पूछेंगे तो जवाब सिर्फ हां होगा...

मुझे अपना नाम एक-दो बार नहीं, तीन-तीन बार बदलना पड़ा... फिर भी लोग आज भी मुझसे घृणा करते हैं। लोग कहते हैं- ये कौन आ गया हमारी सोसाइटी में। हालांकि, इसी सोसाइटी ने हमारे काम को तय किया है, जिसे मुझे झूठा साबित करना था।

6 साल की उम्र में पापा मेरा एडमिशन करवाने के लिए गांव के एक स्कूल में लेकर गए थे। लेकिन एडमिशन नहीं हुआ, वजह मेरी जाति थी। फिर मैं अपनी बुआ के पास आ गया, एडमिशन फिर भी नहीं हुआ, यहां भी वजह मेरी जाति ही थी।

मैं अपने गांव वापस आ गया। यहां चौपाल में एक नया स्कूल खुला, तो आखिरकार मेरा एडमिशन रमेश भंगी के नाम से हो गया। जब छठी क्लास में गया तो मुझे अपने नाम को लेकर अंदर-ही-अंदर घुटन होने लगी। स्कूल के बच्चे, टीचर मुझे भंगी कहकर बुलाते थे। इसके बाद मैंने अपना नाम रमेश चंद वाल्मीकि करवा लिया।

फिर 8वीं-9वीं में आने के बाद मुझे लगा कि ये नाम भी अच्छा नहीं है, क्योंकि वाल्मीकि सरनेम होने की वजह से लोग मुझे साफ-सफाई वाला कहते थे। फिर मैंने अपना नाम बदलकर रमेश चंद गहलोत कर लिया, लेकिन ये बात मेरे स्कूल टीचर को नहीं जमी ।

मुझे याद है - मैंने स्कूल टीचर से कहा था कि वो मेरा नाम बदलकर रमेश चंद गहलोत कर दें। सुनते ही टीचर आग-बबूला हो गए। उन्होंने बोला- गहलोत बनोगे...। उस वक्त नाम आसानी से चेंज हो जाते थे।

मैं सोचता था कि आखिर लोग मुझसे घृणा क्यों करते हैं? मेरे पास क्यों नहीं बैठना चाहते हैं। मुझे लगा कि हम लोग साफ-सफाई करते हैं, मैला ढ़ोते हैं। सुअर

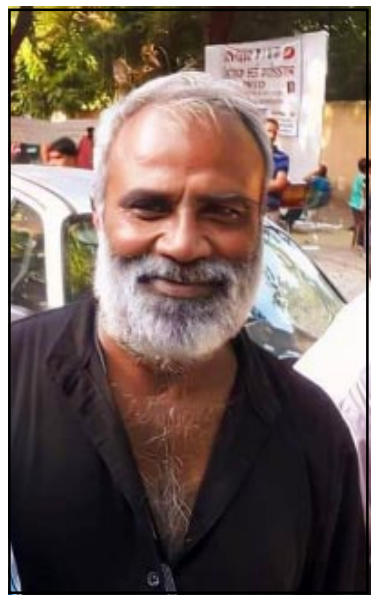

चराते हैं, पोर्क खाते हैं। शायद इसलिए वो घृणा करते हैं।

मैंने पोर्क खाना छोड़ दिया, साफ-सफाई करना भी बंद कर दिया। ये काम इसलिए छोड़ा , ताकि मेरे नाम के साथ ये न जुड़े कि अरे! ये तो भंगी है। लेकिन लोगों की मानसिकता इतनी आसानी से कहां बदली जा सकती है। इसलिए मैंने दुनिया की परवाह छोड़ दी और वापस अपने नाम में भंगी जोड़ लिया।

एक वाकया मुझे याद है। एक टीचर बनारस से बागपत शिफ्ट हुए थे। उन्होंने अपने घर की साफ-सफाई करवाने के लिए मुझे बुलाया था क्योंकि मैं भंगी हूं। घर, बाथरूम... सब कुछ उन्होंने मुझसे साफ करवाया।

जब 17 साल का हुआ, तब मुझे पहली बार इंसान होने का एहसास हुआ। 11वीं क्लास में था, केमिस्ट्री लैब में प्रैक्टिस के दौरान टेस्ट ट्यूब टूट जाता था। तो एक दिन एक टीचर ने मुझे चप्पल पहनकर आने के लिए कहा क्योंकि टेस्ट ट्यूब का कांच पैर में चुभ जाता था। उस दिन पहली बार मैंने चप्पल पहनी।

उसी टीचर ने मेरा नाम लेते हुए मुझे एक ग्लास पानी लाने को कहा। उस दिन मुझे एहसास हुआ कि मैं भी एक जिंदा इंसान हूं। इससे पहले आज तक किसी ने मुझसे पानी तक नहीं मांगा था, क्योंकि लोग मुझे अछूत मानते हैं।

छुआछूत की भावना ऐसी रही कि पापा बताया करते थे कि जब वो 9वीं क्लास में थे, तो उनके टीचर उन्हें एक लंबी छड़ी लेकर पढ़ाते थे ताकि टीचर को उनके पास न आना पड़े।

सामाजिक जद्दोजहद के बीच मैं डॉ. भीम राव अंबेडकर की कहानी, उनके संघर्ष को पढ़ते हुए बड़ा हुआ। इसी वजह से पढ़ने का चस्का लग गया, लेकिन घर की माली हालत ऐसी कि खाने के भी लाले थे। हालांकि, मेरी दादी दूसरे घरों में बच्चा पैदा होने के दौरान दाई का काम करने जाती थीं, इससे थोड़ा बहुत कुछ-न-कुछ खाने को मिल जाता था।

बात 1978 की है जब 21 साल की उम्र में मैं बागपत से दिल्ली आ गया था। यहां मैंने शुरुआत कबाड़ बीनने से की। कबाड़ में जो अच्छी किताबें लगती थी, मैं छांटकर रख लेता। कभी-कभी कबाड़ का मालिक डांटता भी था कि काम करने आए हो या पढ़ने?

कबाड़ी के काम के बदले दूसरा काम भी चुन सकता था, लेकिन रहने-खाने की दिक्कत थी। इसलिए 4 साल तक कबाड़ का काम किया। रोजाना 150 रुपए मिलते थे। उसके बाद 1982 में कबाड़ का काम छोड़कर दिल्ली में बस कंडक्टर का काम करने लगा। यहां भी जाति ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। मैं बस कंडक्टर का रजिस्ट्रेशन करवाने गया था। भंगी होने की बात सुनकर काउंटर पर बैठा क्लर्क बोल पड़ा- यहां क्या कर रहे हो? कंडक्टर बनकर क्या करोगे? सफाई का काम कर लो।

मैंने ठान लिया था कि मेहनत का काम ही करूंगा, सफाई नहीं। 1982-93 तक, 10 साल मैंने बस कंडक्टर का काम किया, लेकिन मेरी पढ़ाई जारी रही और मैंने ब्क्कंप्लीट कर लिया। दो बस स्टॉप के बीच टिकट काटने के बाद मैं पढ़ने लगता था। इसकी वजह से दिल्ली यूनिवर्सिटी के कई प्रोफेसर्स से मेरी पहचान हो गई। लोग मुझे किताब वाला कंडक्टर कहकर बुलाने लगे। साल 1992 बीत रहा था। केंद्र में जूनियर ट्रांसलेटर की वैकेंसी निकली थी और मैंने फॉर्म भर दिया। सौभाग्य से मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर्स में मेरा सिलेक्शन हो गया। उसके बाद 3 साल के लिए मुझे डेप्युटेशन पर लोकसभा में भेजा गया।

ये तो बस शुरुआत थी, मैंने 1998 में क्क्रष्ट द्वारा लिए गए एग्जाम को भी क्रैक कर लिया और फिर से मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर्स में बतौर सीनियर ट्रांसलेटर ऑफिसर के पद पर आ गया। यहां भी मुझे जातिगत आधार पर भेदभाव का सामना करना पड़ा।

नफरत का आलम ये था कि अंतर राज्य परिषद, कैबिनेट सेक्रेटेरिएट, फाइनेंस मिनिस्ट्री, प्रधानमंत्री कार्यालय (क्क्रह्र) समेत अधिकतर मंत्रालय से मुझे एप्रिसिएशन लेटर मिलने के बावजूद मेरे अपने डिपार्टमेंट सेंट्रल ट्रांसलेशन ब्यूरो में मेरे खिलाफ कई कंप्लेन दर्ज की गईं। झूठी शिकायत दर्ज की गई, चार्जशीट थमाई गई।

हालांकि, वो कुछ महीने बाद ही रद्द हो गया। मेरा इंक्रिमेंट रोक दिया गया, जो प्रमोशन 2005 में होना था वो 2018 में मेरे रिटायर होने तक नहीं हुआ। जबकि मेरे रिटायर होने के बाद ही अधिकांश लोगों को एडहॉक प्रमोशन दिया गया। जाति का दंश मेरे करियर या सिर्फ मेरे गांव तक ही सीमित नहीं रहा। अभी मैं गाजियाबाद में रहता हूं। यहां भी मुझे हर रोज भेदभाव का जाति का दंश मेरे करियर या सिर्फ मेरे गांव तक ही सीमित नहीं रहा। अभी मैं गाजियाबाद में रहता हूं। यहां भी मुझे हर रोज भेदभाव का सामना करना पड़ता है। रिटायर्ड अधिकारी होने के बावजूद भी मेरे सोसाइटी के लोगों के मन में रहता है कि ये तो सफाई का काम करने वाला है।

मुझे एक दिलचस्प वाकया याद आ रहा है। जब मैं 2007 में यहां शिफ्ट हुआ था, तो एक पड़ोसी से हमारे अच्छे रिश्ते थे। खाना-पानी... हर चीज का लेन-देन होता था। एक दिन उन्होंने हमारी जाति पूछ ली। पत्नी ने बताया कि हम भंगी हैं। उसी वक्त से उनका रवैया बदल गया।

आज भी जब सीढ़ी से नीचे उतरता हूं, तो लोग मुंह फेर लेते हैं कि कहीं भंगी का मुंह न देखना पड़ जाए। सोसाइटी के लोग हमें फ्लैट में भूत-प्रेत होने की बात कहकर डराते हैं। कहते हैं, यहां से फ्लैट बेचकर कहीं और चले जाओ। परेशान करने का आलम ये है कि छत पर रखे गमले, पानी की टंकी को तोड़ देते हैं।

जाति है कि जाती ही नहीं।